Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.357
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2508S01V13P003

e-ISSN No. 2394-8426
Special Issue on Scientific Research Aug'25
Issue–VIII(I), Volume–XIII

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित राजधर्म

रूमाना
शोधच्छात्रा
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
ईमेल–r786ma@gmail.com

परिचय :–

आचार्य कौटिल्य महान व्यक्तित्व एवं पारंगत राजनीतिज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। आचार्य कौटिल्य एक कुशल राजनीतिज्ञ और यथार्थवादी चिन्तक हैं। कौटिल्य ने मौर्य साम्राज्य के विपुल यश के साथ एक प्राण होकर, एक ओर तो भारत के राजनीतिक इतिहास में अपनी कीर्ति–कथा को अमर बनाया है, वहीं दूसरी ओर अपनी अतुलनीय, अद्भुत कृति ''अर्थशास्त्र'' के कारण संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपने विषय का एकमात्र विद्वान होने का गौरव भी प्राप्त किया है।[1] उनके अन्य आठ नाम भी प्रसिद्ध है– **विष्णुगुप्त, वात्स्यायन, मल्लनाग, चाणक्य, द्रमिल, पक्षिल स्वामी, वराणक तथा गुल।** उनका मूल नाम विष्णुगुप्त था लेकिन चणक का वंशज होने के कारण चाणक्य तथा कुटिल नीति के पक्षपाती होने के कारण उनके कौटिल्य नाम अधिक प्रसिद्ध हुए।[2]

आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र को राजनीति और प्रशासन का शास्त्र माना जाता है। इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से राजव्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित सिद्धान्तों का उल्लेख है। इसके साथ ही विधि व्यवस्था, समाज व्यवस्था एवं धर्म व्यवस्था इत्यादि का भी समावेश है। अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य राजकार्य में राजा को मार्ग दर्शन करना था। कौटिल्य ने शासन की वास्तविक समस्याओं को बहुत ही सूक्ष्मता से समझा है और उन्हें सुलझाने के उपाय बताये हैं। राजा को केन्द्रबिन्दु मानकर लिखा हुआ ये ग्रन्थ केवल राजा की शक्तियों एवं कार्यो के वर्णन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें राजनीति एवं प्रशासन की संरचना और कार्यपद्धति की विशद् विवेचना की गई हैं।

मुख्य शब्द :– अर्थशास्त्र, आचार्य कौटिल्य, राजा, प्रजा, कर्तव्य, न्याय, राजधर्म, दण्ड।

राजधर्म :– राजा के राजनीतिक एवं प्रशासनिक कार्यो से सम्बन्धित कर्तव्यों एवं दायित्वों को राजधर्म की संज्ञा दी गई है। महाभरत में अर्जुन का कथन है कि–''विद्वान पुरुषों ने दण्ड को राजा का धर्म माना है, दण्ड ही सम्पूर्ण जगत पर शासन करता है, सबके सो जाने पर दण्ड ही जागता रहता है''[3] भीष्म के अनसार राजा के धर्मों में सारे त्यागों का दर्शन होता है, राजधर्म में सारी दिक्षाओं का प्रतिपादन हो जाता है, राजधर्म में सभी विद्याओं का संयोग सुलभ है, तथा राजधर्म में सम्पूर्ण लोकों का समावेश हो जाता है।[4] राजधर्म की उपेक्षा करके कोई भी धर्म समुन्नत नहीं हो सकता, जिस प्रकार हाथी के पदचिन्ह में सभी जीवों के पदचिन्ह विलीन हो जाते है, उसी प्रकार राजधर्म में ही सभी धर्म सन्निहित है।[5] राजधर्म प्रणेताओं ने राजा के लिए प्रजारक्षण ही सबसे बड़ा धर्म माना है। राजा के लिए रक्षण कार्य जीवन पर्यन्त अनवरत चलने वाला सत्र है, जिसमें उसे भय एवं मृदुता का परित्याग करना चाहिए।[6] प्रजा को सब प्रकार से सुखी रखना राजा का धर्म है, प्रजा के हित में ही राजा का हित निहित है,[7] शुक्र का मत है कि प्रजा का रञ्जन ही राजा का धर्म है,[8] आचार्य कौटिल्य के अनुसार प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन में है,[9]

राजा :– मनु का मत है कि राजारहित संसार में सर्वत्र आराजकता फैल जाती है। अतः संसार की रक्षा के लिए परमात्मा ने राजा की सृष्टि की। मनुस्मृति में वर्णित है कि परमात्मा ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठ देवों के सार भाग को लेकर राजा की सृष्टि की है।[10] आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा राज्य की कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी है। वह दण्ड का प्रतीक है। राजा अपने प्रजा का संरक्षक है। राजा को अपनी प्रजा के कल्याण हेतु सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।[11]

राजा के गुण एवं कर्तव्य :– आचार्य कौटिल्य का मत है कि राजा ही राज्य की आत्म है। राजा को सर्वशक्तिशाली होना चाहिए, जिससे वह अपने राज्य को सुव्यवस्थित कर सके। इसलिए कौटिल्य ये मानते हैं कि राजा इन्द्र तथा यम के समान गुणों वाला है, उन्होंने राजा की अवमानना को निषेध किया है।[12]

राजा निरंकुश न हो जाए इसका उपाय करते हुए कौटिल्य ने राजा में चार प्रकार के विशेष गुणों को बताया है–

(1) अभिगामिक गुण (2) प्रज्ञागुण
(3) उत्साहगुण (4) आत्मसम्पन्न गुण

अभिगामिक गुण :– महाकुलीन, देवबुद्धि, धैर्यसम्पन्न, दूरदर्शी, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, उच्चाभिलाषी, बड़ा उत्साही, शीध्र कार्य करने वाला, सामन्तों को वश में करने वाला, दृढ़बुद्धि गुणसंपन्न परिवार वाला और शास्त्र बुद्धि, राजा के ये गुण अभिगामिक गुण कहलाते है।

प्रज्ञागुण :– शास्त्रचर्चा, शास्त्रज्ञान, प्रत्येक बात को ग्रहण कर लेना, ग्रहण की हुई बात को याद रखना, ग्रहण की हुई बात का विशेष ज्ञान रखना, तर्क–वितर्क द्वारा किसी बात की तह को पकड़ना, बुरे पक्ष को त्यागना और गुणियों के पक्ष को ग्रहण करना आदि राजा के प्रज्ञा गुण कहलाते हैं।

उत्साह गुण :– शौर्य, अमर्ष, क्षिप्रकारिता और दक्षता ये चार गुण उसके उत्साहगुण कहलाते हैं।

आत्मसम्पन्न गुण :– वाग्मी प्रगल्भ, स्मरणशील, बलवान, उन्नतमन, संयमी, निपुण सवार, विपत्तिग्रस्त शत्रु पर आक्रमण करने वाला, विपत्ति के समय सेना की रक्षा करने वाला, किसी के उपकार या अपकार का यथोचित प्रतिकार करने वाला, लज्जावान, दुर्भिक्ष–सुभिक्ष के समय अन्न आदि का उचित विनियोग करने वाला, दीर्घ दर्शन, दूरदर्शी, अपनी सेना के युद्धोचित देश–काल–उत्साह एवं कार्य का स्वयं देखने वाला, सन्धि के प्रयोगों को समझने वाला, युद्ध में चतुर, सुपात्र को दान देने वाला, प्रजा को कष्ट दिये बिना ही कोष को बढ़ाने वाला, शत्रु के व्यस्नों से लाभ उठाने वाला, अपने मन्त्र को गुप्त रखने वाला, दूसरे की हँसी न उड़ाने वाला, टेढ़ी भौहें करके न देखने वाला, काम, क्रोध, लोभ, मोह, चपलता, उपताप (पश्चाताप) एवं चुगलखोरी से सदैव अलग रहने वाला, प्रियभाषी, हँसमुख, उदारभाषी और वृद्धजनों के उपदेशों एवं आचारों को मानने वाला इन सभी गुणो से युक्त राजा आत्मसम्पन्न कहलाता है।[13]

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा राज्य का प्रमुख अंग है, इस कारण राजा के कर्तव्य भी सर्वाधिक हैं।[14] राज्य की उचित व्यवस्था करना राजा का कर्तव्य है। राज्य में शान्ति–व्यवस्था को बनाए रखना राजा का परम् धर्म हैं,[15] राजा को गुप्तचरों के माध्यम से प्रजा के आचरण की जानकारी प्राप्त कर त्रुटियों में सुधार करना चाहिए।[16] राजा ही अपने राज्य का संरक्षक है। अतः उसे चारो वर्णो, चारों आश्रमों एवं धर्म की रक्षा करना चाहिए।[17] अर्थशास्त्र में राजा के अनेक कर्तव्यों अथवा व्रतों का उल्लेख किया गया है। प्रजा द्वारा किये जाने वाले कार्यो की उचित व्यवस्था, यज्ञ, कलह, सम्बन्धी विषयों में निर्णय देना, दान देना, प्रजा की सम्यक रूप से रक्षा वह पालन–पोषण करना, विधिवत दीक्षा प्राप्त किये हुए व्यक्ति का अभिषेक करना आदि,[18]

राजा की शिक्षा :– उपनयन के बाद राजकुमार सदाचारशील विद्वान आचार्यों से आन्वीक्षकी और त्रयी, विभाग के अध्यक्ष से वार्ता तथा वक्ता–प्रयोक्ता विशेषज्ञों से सन्धि, विग्रह, यान, आसन और द्वैधीभाव आदि

दण्डनीति विषयों की शिक्षा ग्रहण करें।[19] आचार्य कौटल्य ने आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्या माना है।[20] राजकुमारों की इन चारों विद्याओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। राजकुमार को सोलह वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। इसके पश्चात उनका समावर्तन संस्कार होना चाहिए और विवाह के बाद राजकुमार अपने विनय की वृद्धि के लिए सदैव विद्यावृद्ध पुरुषों की संगति में रहें,[21]

राजा की दिनचर्या :– आचार्य कौटिल्य के अनुसार पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा–संबंधी कार्यों का निरिक्षण करे और बीते हुए दिन के आय–व्यय की जाँच करे। दूसरे भाग में वह पुरवासियों तथा जनपदवासियों के कार्यों का निरिक्षण करें। तीसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे और चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को संभाले तथा उसी भाग में विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति भी करें। उत्तरार्ध के पाँचवें भाग में वह मन्त्री परिषद के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यो के सम्बन्ध में विचार–विनियम करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों एवं गुप्त बातों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करें, छठे भाग में वह स्वतन्त्र होकर स्वेच्छा से विहार तथा विचार करें, सातवें भाग में हाथी, घोडे, रथ तथा अस्त्र–शस्त्रों का निरिक्षण करें। अन्तिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के सम्बन्ध में विचार विमर्श करें। दिनांत के बाद राजा संध्योपासना करें।

इसी प्रकार रात्रि के पहिले भाग में वह गुप्तचरों से मिले, दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में संगीत सुनता हुआ शयन करे और चौथे एवं पाँचवें भाग तक सोता रहे। रात्रि के छठे भाग में संगीत के द्वारा जागा हुआ वह अर्थशास्त्र संबंधी तथा दिन में संपादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करें। सातवें भाग में गुप्त–मंत्रणा करे और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे। रात्रि के अन्तिम आठवें भाग में ऋत्विक, आचार्य, तथा पुरोहित के साथ स्वास्तिवाचन–सहित आशीर्वाद ग्रहण करें। इसी समय वह वैद्य, प्रधान, रसोइया और ज्योतिषी आदि से भी तत्संबंधी बातो पर परामर्श करें। इन सब कार्यों से निवृत हो वह बछड़े वाली गाय और बैल की प्रदक्षिणा करके राज–दरबार में प्रवेश करें,

आचार्य कौटिल्य ये भी कहते है कि शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार राजा स्वेच्छा से अपनी कार्य–व्यवस्था को स्वयं भी निर्धारित कर सकता है,[22]

राजा की सुरक्षाः– प्रातःकाल राजा के बिस्तर से उठते ही, धनुष–बाण लिये स्त्रियाँ उन्हें सुरक्षा के लिए घेर ले। प्रत्येक कक्ष में राजा के लिए सुरक्षा व्यवस्था होनी चाहिए। वंश–परम्परा से अनुगत, उच्च कुल में उत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य को भलि–भाँति समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करें।

पाठशाला के अध्यक्ष को चाहिए की वह किसी एकान्त स्थान में सुरक्षा के साथ भोजन तैयार कराये और भोजन की जाँच करे, राजा भी भोजन करने से पूर्व अग्नि तथा पक्षियों को बलि प्रदान करने के पश्चात भोजन ग्रहण करें। राजा के निकट एक कुशल वैद्य अनिवार्य रूप से रहना चाहिए। राजा द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं, खाद्य–पदार्थों, औषधियों इत्यादि की भलि–भाँति जाँच करने के पश्चात ही उन्हें उपयोग करें। राजमहल में राजा की सुरक्षा का कड़ा प्रबन्ध होना चाहिए तथा बाहर जाते या बाहर से आते समय राजा के साथ रक्षक होने चाहिए।[23]

मन्त्रिमण्डलः– आचार्य कौटिल्य ने राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए राज्य को सात अंगों में बाँटा है, इन्हें सात प्रकृतियाँ कहते हैं–

''स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः''।[24]

(1) स्वामी (2) अमात्य (3) जनपद (4) दुर्ग
(5) कोष (6) दण्ड (सेना) (7) मित्र

स्वामी :– स्वामी से तात्पर्य मालिक या प्रमुख से है। राजा ही राज्य का प्रमुख था, आचार्य कौटिल्य ने उच्च कुल में उत्पन्न, बुद्धिमानी, उत्साही और आत्मसम्पन्न आदि राजा के गुण बताए हैं।

अमात्य :– कौटिल्य ने अमात्य शब्द का प्रयोग मन्त्री के अर्थ में नहीं किया है, बल्कि अमात्य वर्ग से आश्य प्रमुख पुजारी, मन्त्रियों, संग्रहकर्ता, खजांची, दीवानी, फौजदारी, प्रशासन में नियुक्त अधिकारियों अन्तःपुर के लिए नियुक्त अधिकारियों, दूत तथा विभिन्न विभागों के प्रमुख से है। अमात्य कूलीन, बुद्धिमान, पवित्र हृदय, शूरवीर तथा स्वामी के प्रति अनुराग रखने वाला होना चाहिए।

जनपद :– जनपद से तात्पर्य क्षेत्र और जनसंख्या से है। जनपद की स्थापना एसी होनी चाहिए कि जिसके बीच में तथा सीमान्तों में किले बने हों।

दुर्ग :– दुर्ग से तात्पर्य किले युक्त राजधानी से है, राजा को चाहिए की चारों दिशाओं में, जनपद के सीमा स्थानों पर ही दुर्ग का निर्माण करायें। युद्ध के समय में ऐसे स्थान सुरक्षित माने जाते थे। इस प्रकार के दुर्ग मुख्य रूप से चार प्रकार के होते है– **औदक दुर्ग, पवित्र दुर्ग, धान्वन दुर्ग, वन दुर्ग।**

कोष :– राजकोष ऐसा होना चाहिए जिसमें पूर्वजनों की तथा धर्म की कमाई संचित हो, धान्य, सुवर्ण, चाँदी तथा विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य रत्नों से भरा हो, जो आपत्तिकाल के समय सारी प्रजा की रक्षा कर सकें।

दण्ड (सेना) :– इसमें पैदल, सेना, रथ, हाथी, घुड़सवार आदि होने चाहिए, सेना युद्धकौशलों से परिचित और हर तरह के युद्ध में निपुण होनी चाहिए।

मित्र :– मित्र ऐसे होने चाहिए, जो वंशपरम्परागत हों, स्थायी हों, वश में रह सकें, जिनसे विरोध की संभावना न हो और जो आवश्यकता पड़ने पर सहायता के लिए आ सकें,

आचार्य कौटिल्य ने मन्त्रियों को विशेष महत्व दिया है, उनके अनुसार जिस तरह एक गाड़ी को चलाने के लिए कई पहियों की आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी तरह राजा को भी राजकार्य करने के लिए मन्त्रियों की आवश्यकता होती है। इसलिए राजा को चाहिए की वह धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा और भयोपधा आदि परिक्षाओं में सफलता प्राप्त किये हुए अमात्यों को ही मन्त्रि पद पर नियुक्त करें, शेष अमात्य अपनी विशिष्टा के आधार पर अन्य विभाग के अध्यक्ष बनाए जाए।[25] कौटिल्य ने मन्त्रियों की संख्या तीन से चार निर्धारित की है, लेकिन आवश्यकता के अनुसार संख्या बढ़ाई जा सकती है। राजा को अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए मन्त्रियों से परामर्श लेना चाहिए, किसी विशेष या संदिग्ध अथवा विवादग्रस्त विषयों पर बहुमत के निर्णय को प्राथमिकता देते हुए राजा को कोई निर्णय लेना चाहिए।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा को मन्त्रियों से मन्त्रणा करने के बाद ही कार्य आरम्भ करना चाहिए। मन्त्रि परिषद की बैठक गोपनीय तरीके से करनी चाहिए, बैठक की जगह चारो तरफ से बन्द हो अथवा सरक्षित हो जिससे ध्वनि बाहर न जा सके और पशु–पक्षी भी न देख सकें और न मन्त्रणा को सुन सकें जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को गुप्त रखता है और केवल आवश्यकता पड़ने पर उनको प्रकट करता है, उसी प्रकार राजा को भी चाहिए की जब तक कार्य आरम्भ न हो जाए मन्त्र को गुप्त रखे और जब आवश्यक हो तब मन्त्रों को प्रकाशित करें।[26]

कौटिल्य का मत है कि राज्य के कर्मचारियों एवं पदाधिकारियों को उनके पद के अनुसार वेतन दिया जाना चाहिए। वेतन इतना होना चाहिए, जिससे उनका एवं उनके परिवार का भरण–पोषण सहजता से हो सकें, क्योंकि वेतन की न्यून्ता कर्मचारियों को कुपित कर देती है।[27]

न्यायपूर्वक प्रजा पर शासन करना ही राजा का कर्तव्य है। यही स्वर्ग की प्राप्ति का साधन है। प्रजा पर अन्याय करने वाला राजा कभी सुखी नहीं रहता। अतः राजा को न्याय करते समय पुत्र एवं शत्रु में भेद नहीं करना चाहिए। जनता को न्याय मिल रहा है या नहीं ये देखना राजा का उत्तरदायित्व है। राजा का

धर्म है कि वह न्यायपूर्वक राज–कार्य करने के लिए अपने सुखों का त्याग कर यथासमय न्यायालय में उपस्थित रहे।[28]

प्राचीन राजनीतिक आचार्यों का मानना है कि दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है जिससे की सभी मुनष्यों को वश में किया जा सकें, परन्तु आचार्य कौटिल्य का मानना है कि कठोर दण्ड देने वाले राजा से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते है, किन्तु दण्ड में ढिलाई कर देने से भी प्रजा राजा की अवहेलना करने लगती है। अतः राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए। अच्छी तरह से सोच–समझ कर दिया गया दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रवृत्त करता है। काम–क्रोध में वशीभूत होकर अनुचित रूप से दिया गया दण्ड लोगों को कुपित कर देता है। अतः राजा का कर्तव्य है कि वह दण्ड के माध्यम से दुर्बलों को सुरक्षा प्रदान करे। कौटिल्य ने चार प्रकार के दण्ड का उल्लेख किया है, जैसे– **वाक्यपारूष्य, दण्डपारूष्य, अर्थ दण्ड एवं वधदण्ड।**[29]

आचार्य कौटिल्य ने युद्ध के नियमों का उल्लेख किया है किन्तु वह अनावश्यक युद्ध के पक्षधर नहीं है, कौटिल्य ने तीन प्रकार के युद्ध का वर्णन किया है– **प्रकाश (धर्म) युद्ध, कूट युद्ध, तूष्णी युद्ध,** कौटिल्य ने धर्मयुद्ध को विशेष रूप से सही माना है।[30]

कौटिल्य ने राज्य की सुरक्षा एवं उन्नति के लिए षाड्गुण्य नीति का प्रतिपादन किया है– **सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैदीभाव** ये परराष्ट्र नीति के छः विशेष गुण हैं।

दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना सन्धि, शत्रु का कोई अपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, चढ़ाई करना यान, आत्मसमर्पण करना संश्रय और सन्धि–विग्रह दोनों से काम लेना द्वैधीभाव कहलाता है।[31]

निष्कर्ष :– कौटिल्य के विचारों में यह स्पष्ट रूप से झलकता है कि एक आदर्श शासक वही है जो व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर लोकमंगल की भावना को प्राथमिकता देता है। इनके राजधर्म की संकल्पना में प्रजा का कल्याण, विधि का शासन, धर्म और अर्थ का समन्वय तथा एक सशक्त प्रशासनिक व्यवस्था का चित्रण किया गया है। इन्होने यह प्रतिपादित किया है कि राजा यदि राजधर्म से विमुख होता है तो राज्य और समाज दोनों का पतन होना सुनिश्चत है।

अतः कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित राजधर्म आज भी एक आदर्श शासन के मॉडल के रूप में प्रासंगिक है, जो न केवल प्राचीन भारत की शासन प्रणाली को दर्शाता है, बल्कि आधुनिक प्रशासन को भी नैतिक और व्यावहारिक दिशा प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् वाचस्पति गैरोला– पृष्ठ–63
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र, ओमप्रकाश शर्मा – पृष्ठ–1
3. महाभारत, 15/2
4. वहीं, 63/29
5. वहीं, 63/25
6. विष्णुधर्मसूत्र– 3/2–3, वसिष्ठधर्मसूत्र–18/7–8
7. विष्णुधर्मसूत्र– 3/98
8. शुक्रनीतिसार –अ0 1, पृष्ठ 744
9. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्– 1/14/18
10. मनुस्मृति– 7/106–107
11. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्– 1/19/39

12. वहीं, 1/13/10–11
13. वहीं, 6/96/1
14. प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में राजधर्म का निरूपण, केदार शर्मा–द्वितीय भाग, पृष्ठ–81
15. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्– 1/13, 1/12
16. वही, 1/13/1
17. वहीं, 3/1/19
18. वही, 1/14/18
19. वही, 1/2/4/4
20. वही, 1/2/4/5
21. वही, 1/2/1
22. वही, 1/14/18
23. वही, 1/16/20
24. वही, 6/96/1
25. वही, 1/5/9
26. वही, 1/10/14
27. वही, 5/91/3
28. वही, 3/1/53
29. वही, 3/75/18–19
30. वही, 7/6/46
31. वही, 7/98–99/1